समझौते और डर से नहीं आएगा लोकतंत्र: चौबीसवाँ न्यूज़लेटर (2024)

आयशा ख़ालिद और इमरान कुरैशी (पाकिस्तान), टू विंग्स टू फ्लाई, नॉट वन, 2017

प्यारे दोस्तो,

ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन

इस साल के अंत तक दुनिया की आधी आबादी को वोट देने का मौका मिल चुका होगा; 64 देश और यूरोपीय संघ की मतदान पेटियाँ खुल चुकी होंगी। इससे पहले कभी भी एक साल में इतने चुनाव एक साथ नहीं हुए। इन्हीं देशों में से एक भारत भी है, जहाँ एक जून को ख़त्म हुए चुनावों में कुल 64.2 करोड़, यानी लगभग दो तिहाई ने वोट दिया। इनमें से आधी महिलाएँ थीं। अब तक दुनिया के किसी भी चुनाव में महिला मतदाताओं की भागीदारी इससे ज़्यादा नहीं रही है।

इस बीच यूरोपीय संघ के 27 सदस्य देशों में यूरोपीय संसद के लिए चुनाव हुए, यानी 37 करोड़ 30 लाख मतदाताओं को मौक़ा मिला इस विधायिका के 720 सदस्यों को चुनने का। मतदाताओं के इस आंकड़े में जोड़ लीजिए संयुक्त राज्य अमेरिका (16 करोड़ 10 लाख), इंडोनेशिया (20 करोड़ 40 लाख), पाकिस्तान (12 करोड़ 90 लाख), बांग्लादेश (12 करोड़), मेक्सिको (9.8 करोड़) और दक्षिण अफ़्रीका (4.2 करोड़) के मतदाताओं को। इससे आपके सामने साफ़ हो जाएगा कि क्यों 2024 सही मायने में एक चुनावी साल लग रहा है।

अल्फ्रेडो रामोस मारतीनेज़ (मेक्सिको), वेनदेड़ोरा डे एल्कट्राज़ ('काला लिली वेन्डोर, 1929')

पिछले कुछ हफ्तों में तीन बेहद अहम चुनाव हुए – भारत, मेक्सिको और दक्षिण अफ्रीका में। भारत और दक्षिण अफ्रीका **ब्रिक्स** समूह के बहुत ज़रूरी घटक हैं। यह गठबंधन एक ऐसी **वैश्विक व्यवस्था** बनाने की ओर बढ़ रहा है जिसमें

यूएस का दबदबा नहीं हो। ज़ाहिर है इन देशों में जो गठबंधन सत्ता में आए हैं, उनका इस साल अक्टूबर में काज़ान (रूस) में होने वाले **ब्रिक्स सम्मेलन** की अंदरूनी गुटबाज़ियों और उसके स्वरूप पर प्रभाव पड़ेगा। मेक्सिको हालांकि ब्रिक्स का सदस्य नहीं है और पिछले साल जब इस समूह की सदस्यता **बढ़ाने** की कवायद चल रही थी तो उसने इसके लिए आवेदन भी नहीं दिया। लेकिन मेक्सिको संयुक्त राज्य अमेरिका के चंगुल से निकलना चाहता है (1884 से 1911 तक देश के राष्ट्रपति रहे पॉर्फिरीयो डियाज़ का बयान 'बेचारा मेक्सिको: ईश्वर से इतना दूर, संयुक्त राज्य अमेरिका के इतने पास' अधिकतर मेक्सिकन लोगों को याद ही होगा)। इधर कुछ समय से मेक्सिको की सरकार लैटिन अमेरिका में यूएस के हस्तक्षेप और व्यापार और विकास के नवउदारवादी ढाँचे की तरफ़ से मुँह फेरती हुई दिख रही है, जिससे इस देश का ब्रिक्स जैसे वैकल्पिक समूहों के साथ संवाद काफ़ी बेहतर हुआ है।

भारत और दक्षिण अफ्रीका के नतीजों ने भले ही दिखाया हो कि वहाँ के मतदाता काफ़ी हद तक बंटे हुए हैं, लेकिन मेक्सिको के वोटर सेंटर–लेफ्ट नैशनल रिजेनरेशन मूवमेंट (MORENO) के साथ ही रहे और 2 जून को देश के इतिहास में पहली दफ़ा एक महिला क्लाउडिया शेनबाउम राष्ट्रपति चुनी गईं। वह एंड्रेस मैनुएल लोपेज़ ओब्रादोर (AMLO) की जगह लेंगी, जो 80 प्रतिशत की बेहतरीन **रेटिंग** (यानी 80% लोग उनके काम को पसंद करते हैं) के साथ अपना पद छोड़ रहे हैं। 2018 से 2023 तक मेक्सिको सिटी के मेयर के रूप में और AMLO की एक सहयोगी के तौर पर शेनबाउम ने, 2018 में AMLO द्वारा फोर्थ ट्रांसफॉर्मेशन (4T) के तहत रखे गए आम सिद्धांत का पालन किया। **'मेक्सिकन मानवतावाद'** का यह 4T प्रोजेक्ट मेक्सिको के इतिहास के तीन अहम कालों पर टिका है: स्वतंत्रता (1810-1821), सुधार (1858-1861) और क्रांति (1910-1917)। हालांकि AMLO आमतौर पर इस 4T प्रोजेक्ट का ज़िक्र मेक्सिको के इतिहास को आगे ले जाने के संदर्भ में करते हैं, लेकिन असल में यह मेक्सिकन क्रांति के वायदों की तरफ़ लौटने की कोशिश है। यह देश की प्राकृतिक संपदाओं (लिथियम सहित) के **राष्ट्रीयकरण** की माँग करता है, मज़दूरी बढ़ाने की माँग करता है, सरकारी नौकरियों की संख्या बढ़ाने की बात करता है और सामाजिक कल्याण को फिर से खड़ा करने की बात करता है। अपने प्रतिद्वंदियों को हराकर शेनबाउम के जीतने का एक कारण यह भी रहा कि उन्होंने **4T एजेंडे** को जारी रखने का **संकल्प** लिया। यह एजेंडा लोकलुभावन है (ऐसा बुर्जुआ प्रेस का कहना है) और इससे भी ज़्यादा इसकी जड़ें हैं एक सच्चे कल्याणकारी मानवतावाद में।

जॉर्ज पेंबा (दक्षिण अफ़्रीका), टाउनशिप गेम्स, 1973

इस साल मई में, रंगभेद के ख़ात्मे के तीस साल बाद, दक्षिण अफ़्रीका में रंगभेद के बाद के दौर के सातवें आम चुनाव हुए। इसके नतीजे मेक्सिको के नतीजों के बिल्कुल उलट रहे। अफ़्रीकन नैशनल कांग्रेस (ANC), साउथ अफ़्रीकन कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस कंफेडेरशन ऑफ साउथ अफ़्रीकन ट्रेड यूनियन्स के सत्ताधारी त्रिपक्षीय गठबंधन को भारी झटका लगा। गठबंधन ने इस बार सिर्फ 40.18 फीसदी मत ही पाए (यह बहुमत से 42 सीटें दूर रहा), जबकि 2019 में इसे 59.50 प्रतिशत वोट मिले थे और नैशनल असेंबली में इसने आसानी से बहुमत हासिल कर लिया था। इस चुनावों की एक और अजीब बात यह रही कि न सिर्फ़ गठबंधन के वोट प्रतिशत में कमी आई, बल्कि मतदाता भी चुनाव के लिए कम निकले। यही सिलसिला काफ़ी समय से चला आ रहा है। 1999 से ही वोट करने आ रहे मतदाताओं की संख्या में लगातार कमी आ रही है, इस बार तो मतदाताओं में से सिर्फ़ 58 प्रतिशत ही वोट डालने आए (1994 में यह आंकड़ा 86 प्रतिशत था)। इसका **मतलब** यह हुआ कि त्रिपक्षीय गठबंधन को कुल मतदाताओं में से सिर्फ 15 फीसदी का ही वोट मिला, जबकि इसके प्रतिद्वंदियों को इससे भी कम वोट पड़े। दक्षिण अफ़्रीका की जनता, बाक़ी दुनिया के लोगों की ही तरह, न सिर्फ़ तमाम राजनीतिक दलों से ऊब चुकी है, बल्कि लगातार चुनावी प्रक्रिया और समाज में राजनेताओं की भूमिका से भी उनका विश्वास उठता जा रहा है।

दक्षिण अफ़्रीका के चुनावी नतीजों का गहराई से मूल्यांकन करें, तो पता चलेगा कि ANC से अलग हुई ताक़तें यानी जेकब ज़ूमा की उमखोंटो वी सिज़वे (एमके) और जूलियस मलेमा की इकनॉमिक फ्रीडम फाइटर्स, दोनों ने मिलकर 64.28 प्रतिशत वोट हासिल किए। ये 1994 में सत्ताधारी गठबंधन को मिले वोटों से भी ज़्यादा है। इन तीन ताक़तों ने जो व्यापक वायदे किए वो वही हैं (गरीबी ख़त्म करना, भूमि अधिग्रहण, बैंकों और खदानों का राष्ट्रीयकरण और सामाजिक कल्याण

का विस्तार)। हालांकि इन उद्देश्यों को हासिल करने के इनके रास्ते बेहद अलग हैं इससे इनमें जो दुराव आए हैं, वे निजी दुश्मनियों की वजह से और भी बढ़ गए हैं। आख़िरकार दक्षिण अफ्रीका में एक बड़े गठबंधन की ही सरकार बनेगी लेकिन मेक्सिको की तरह यह सरकार एक सामाजिक लोकतांत्रिक राजनीति को परिभाषित कर पाएगी, यह देखना अभी बाक़ी है। व्यापक संदर्भ में व्यवस्था के लिए जनता के घटते हुए इस विश्वास से साफ़ है कि अब उनका किसी भी राजनीतिक प्रोजेक्ट में ही कोई विश्वास नहीं रहा है। वायदे जब पूरे न हों तो सड़ने लगते हैं।

कल्याण जोशी (भारत), माइग्रेशन इन द टाइम ऑफ कोविड, 2020

भारत में 19 अप्रैल से 1 जून के बीच चले छह हफ़्ते लंबे चुनावों से पहले अतिवादी दक्षिणपंथी राजनीतिक दल भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) के नरेंद्र मोदी, जो पिछले प्रधानमंत्री भी थे, ने कहा कि उनकी पार्टी 543 सीटों वाले सदन में 370 सीटें लाकर एक शानदार जीत हासिल करेगी। लेकिन हुआ यूँ कि बीजेपी सिर्फ़ 240 सीटों पर सिमट गई — 2019 के मुकाबले यह 68 सीटों का नुक़सान था — और उनका राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन या एनडीए कुल 293 सीटें जीता (सरकार बनाने के लिए 272 का बहुमत चाहिए होता है)। मोदी खुद अपनी सीट पर महज़ 1,50,000 वोटों से जीते जबकि 2019 में यह आँकड़ा 4,50,000 का था। इसके साथ ही उनके पंद्रह कैबिनेट मंत्री चुनाव हार गए। मुसलमानों के ख़िलाफ़ ज़हर उगलने या विपक्षी पार्टियों और मीडिया को चुप कराने के लिए सरकारी एजेंसियों के इस्तेमाल के बावजूद अतिवादी दक्षिणपंथी सत्ता पर अपनी पकड़ और मज़बूत करने में नाकामयाब रहे।

अप्रैल में हुए एक **सर्वे** में जिन लोगों से बात की गई उनमें से दो-तिहाई ने कहा कि बेरोज़गारी और महँगाई उनके लिए ज़रूरी मुद्दे हैं, उन्होंने बताया कि शहरों में रहने वालों के लिए नौकरी ढूँढना मुश्किल होता जा रहा है। भारत की 1.4 अरब की आबादी में से चालीस प्रतिशत लोगों की उम्र 25 साल से कम है और सेंटर फॉर मोनिट्रिंग इंडियन इकॉनमी के

एक **शोध** से पता चला कि भारत में 15 से 24 साल के बीच के युवा 'गिरती श्रम बल भागीदारी दर और चौंका देने वाले बेरोज़गारी की बढ़ती दर की दोगुनी मार झेल रहे हैं'।

युवाओं में बेरोज़गारी दर है 45.4%, ये 7.5% की समग्र बेरोज़गारी दर से छ: गुना ज़्यादा है।

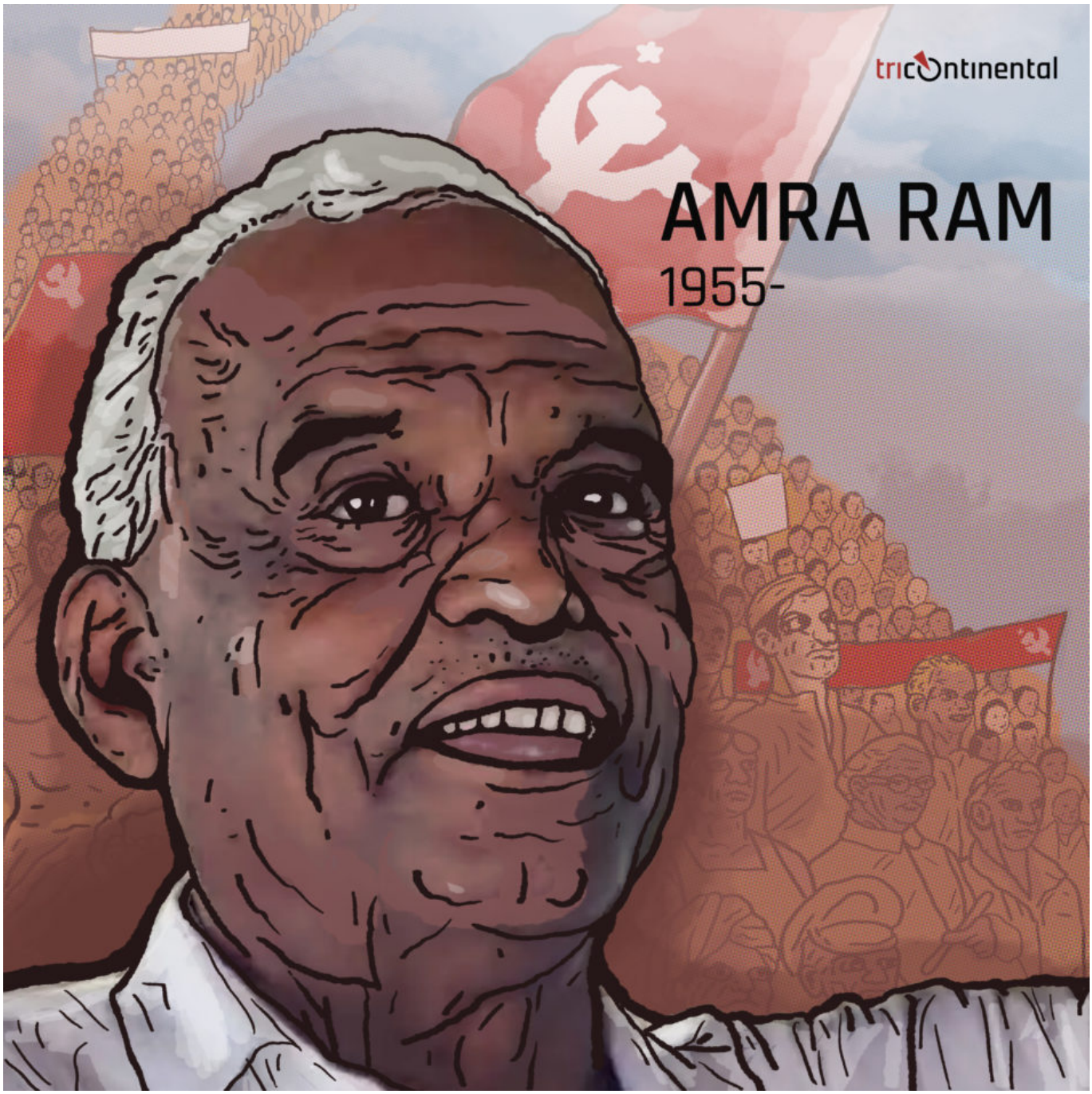

भारत के मज़दूर वर्ग और कृषक वर्ग के युवा घर पर बैठने को मजबूर हैं और उनका यह संकट उनके पूरे परिवार की सोच पर गहरे अर्थों में प्रभावित करता है। रोजमर्रा जीवन की इस निराशा ने मोदी के अजेय होने का भ्रम तोड़ दिया है। मोदी फिर से प्रधानमंत्री तो बने, लेकिन उनका यह कार्यकाल कैसा होगा, यह बहुत हद तक इस पर निर्भर करेगा कि उन लाखों ग़रीब भारतीयों के जीवन में कैसी स्थितियां रहती हैं, जिनकी आवाज़ बनकर इस बार एक अपेक्षाकृत मज़बूत विपक्ष संसद में पहुँचा है। इस विपक्ष का हिस्सा जन आंदोलनों के कुछ नेता भी हैं। इनमें हैं भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी

(मार्क्सवादी) और अखिल भारतीय किसान सभा के नेता अमरा राम जो **किसान आंदोलन** के एक गढ़ सीकर से भारी जीत हासिल करके संसद पहुँचे हैं। उनके साथ ही होंगे डिंडीगुल (तमिलनाडु) से जीते अखिल भारतीय किसान सभा और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के नेता सचिदानंदम और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी–लेनिनवादी) लिबरेशन के नेता राजा राम कुशवाहा जो काराकाट (बिहार) से जीते हैं। कुशवाहा 250 किसान संगठनों के एक साझे मंच 'अखिल भारतीय किसान संघर्ष समन्वय समिति' के संयोजक भी हैं। संसद में अब किसानों की बात रखने वाले नेता पहुँच चुके हैं।

ट्राईकॉन्टिनेंटल रिसर्च सर्विसेज के नीतीश नारायणन **लिखते** हैं कि संसद में वाम दल अपने ज़्यादा नेता तो नहीं पहुँचा पाए, लेकिन इन्होंने इस बार के चुनावों में बहुत अहम भूमिका निभाई है। वह यह भी लिखते हैं कि अमरा राम 'संसद में किसानों की ताक़त के प्रतिनिधि के तौर पर पहुँचे हैं। इस ताक़त ने उत्तर भारत में बीजेपी की निर्विवाद अजेयता को पहला झटका दिया है। अमरा राम के संसद में होने का मतलब है सड़कों पर गुलज़ार भारतीय लोकतंत्र का संसद में होना'।

हेरी डोनो (इंडोनेशिया), रीज़िस्टन्स टू द पॉवर ऑफ पर्सीक्यूशन, 2021

'लोकतंत्र' का विचार किसी मतदान पेटी तक सीमित नहीं है। भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों की तरह चुनाव अब एक बेहद महँगी प्रक्रिया हो चुका है। इस बरस भारत के आम चुनावों की **लागत** रही 16 अरब डॉलर, जिसमें से ज़्यादातर बीजेपी और उसके सहयोगियों ने ही ख़र्चे। पैसा, ताक़त और राजनीतिक बहस के बर्बाद हो जाने से लोकतांत्रिक भावना भ्रष्ट हो चुकी है।

इस लोकतांत्रिक भावना की खोज खुद लोकतंत्र जितनी ही पुरानी है। 1949 में कम्युनिस्ट कवि लैंग्स्टन ह्यूज़ ने अपनी लघु कविता 'लोकतंत्र' में इसी खोज को बयां किया था। यह कविता उस दौर में वोट के अधिकार की बात करती थी और आज हमारे दौर में लोकतंत्र के सही मायने क्या हैं इस पर गहराई से सोचे जाने की ज़रूरत पर ज़ोर देती है — एक ऐसा लोकतंत्र जो न पैसे से ख़रीदा जा सके और न ही ताक़त से डराया जा सके।

समझौते और डर से
नहीं आएगा लोकतंत्र
न आज, न इस बरस
न कभी भविष्य में

मुझे अपनी ज़मीन पे
अपने दो पैरों पे खड़े होने का
उतना ही हक़ है
जितना कि तुम्हें

मैं थक गया हूँ
लोगों को कहते सुनते,
होने दो जो हो रहा है।
कल एक नई सुबह होगी।
मरने के बाद आज़ादी मेरे किस काम की।
मैं कल की रोटी के ख़्वाब पर आज ज़िंदा नहीं रह सकता।

आज़ादी एक सशक्त बीज है
जो बोया जाता है
गाढ़ी ज़रूरत में।
सुनो, अमेरिका —
मैं भी रहता हूँ यहाँ।
मुझे भी चाहिए आज़ादी
तुम्हारी ही तरह।

स्नेह सहित,
विजय